
इकाई 21 औद्योगिक सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

- 21.0 उद्देश्य
- 21.1 प्रस्तावना
- 21.2 औद्योगिक संबंध : आवश्यकता और महत्त्व
- 21.3 भारत में औद्योगिक संबंधों में प्रमुख पक्ष
 - 21.3.1 श्रमिक संघ (यूनियन)
 - 21.3.2 मालिकों के संघ
 - 21.3.3 सरकार
- 21.4 भारत में औद्योगिक विवाद
 - 21.4.1 औद्योगिक विवाद की प्रवृत्तियाँ
 - 21.4.2 सार्वजनिक और निजी क्षेत्र में औद्योगिक संबंध
- 21.5 औद्योगिक विवादों का निपटारा
 - 21.5.1 विवादों का निवारण
 - 21.5.2 विवादों का निपटारा प्रणाली
- 21.6 सामूहिक समझौता
 - 21.6.1 भारत में सामूहिक समझौते की स्थिति
- 21.7 प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी
 - 21.7.1 प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी के उद्देश्य
 - 21.7.2 प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी की सफलता की पूर्वपेक्षाएं
 - 21.7.3 भारत में प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी
 - 21.7.4 प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी की व्यवस्था
- 21.8 आर्थिक सुधार और औद्योगिक संबंधों में कठिनाइयाँ
- 21.9 सारांश
- 21.10 शब्दावली
- 21.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 21.12 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

21.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे :

- औद्योगिक संबंधों का अर्थ और महत्त्व;
- औद्योगिक संबंधों में प्रमुख पक्ष;
- औद्योगिक विवादों की प्रवृत्ति;
- औद्योगिक विवादों को निपटाने की व्यवस्था;
- सामूहिक समझौता और प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी;
- आर्थिक सुधार और औद्योगिक संबंधों में कठिनाइयाँ।

21.1 प्रस्तावना

औद्योगिक संबंधों से तात्पर्य है— एक ओर श्रमिक और दूसरी ओर उसके मालिक के बीच

संबंध। श्रमिक मजदूरी के बदले अपनी सेवाएँ प्रस्तुत करते हैं। परन्तु उनका निष्पादन कार्य के दौरान उपलब्ध परिस्थितियाँ, अर्थात् मजदूरी को छोड़, काम-काज से जुड़ी अन्य परिस्थितियों पर निर्भर करता है। औद्योगिक संबंधों का सार है— प्रबंधन अपने श्रमिकों के साथ कैसा बर्ताव करना है और श्रमिक किस प्रकार अपने मालिकों के हित में काम करते हैं। आधुनिक संगठित उद्योगों में से अधिकांश उद्योगों में श्रमिक अपने आपको संघों में संगठित कर लेते हैं और उसे अपने सामान्य हितों के लिए इस्तेमाल करते हैं। संघों का उपयोग वे अच्छे और सुधरते काम के माहौल को सुनिश्चित करने के लिए कर सकते हैं। दूसरी ओर, मालिक भी उस सीमा तक काम की परिस्थितियों में सुधार लाना चाह सकते हैं जहाँ तक नई लागत से श्रमिकों की उत्पादिता और उत्पादन में वृद्धि हो ताकि उन्हें लागत के बदले मुआवज़ा मिले।

किसी औद्योगिक इकाई का विकास, उसमें प्रौद्योगिक परिवर्तन, इत्यादि, श्रमिकों की काम की परिस्थितियों को प्रभावित करते हैं। इनमें से कुछ, जैसे विकास से श्रम के सृजन में वृद्धि हो सकती है। वे इनका स्वागत कर सकते हैं और इन्हें बढ़ावा भी देना चाहेंगे। परन्तु प्रौद्योगिक परिवर्तन जो श्रमिकों को मशीनों द्वारा विस्थापित करते हैं, श्रमिकों की उत्पादिता तो बढ़ा सकते हैं परन्तु इनके फलस्वरूप छँटनी भी हो सकती है। यदि प्रौद्योगिक परिवर्तन के साथ विस्तार न जुड़ा हो तो यह श्रमिकों के हितों के प्रतिकूल हो सकता है। इस प्रकार औद्योगिक संबंधों के विषय के अनेक पहलू हैं : (i) श्रमिकों और प्रबंधन के बीच संबंध, (ii) श्रमिकों के बीच संबंध, और (iii) श्रमिक संघों के बीच संबंध।

21.2 औद्योगिक संबंध : आवश्यकता और महत्त्व

किसी भी उत्पादन इकाई में उत्पादन प्रबंधन और श्रमिकों के संयुक्त प्रयासों का परिणाम होता है। अतः उत्पादन के लक्ष्य प्राप्त करने और उत्पादन बढ़ाने के लिए सद्भावपूर्ण औद्योगिक संबंध अनिवार्य हैं। अच्छे संबंध न होने की स्थिति में औद्योगिक संघर्ष उत्पन्न होते हैं और समाज के सभी वर्गों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। खराब औद्योगिक संबंधों के अन्य परिणाम हैं : काम में रुकावट, श्रमिकों का दरिद्र होना और छँटनी। उत्पादन में रुकावट से प्रबंधन को हानि का सामना करना पड़ता है, लागत में वृद्धि होती है और मशीनों तथा उपकरणों को क्षति पहुँचती है। उत्पादन क्रियाओं के भंग होने से राष्ट्रीय आय में गिरावट आती है। इसके कारण सरकारी राजस्व में भी कमी होती है। कानून और व्यवस्था बनाए रखने तथा औद्योगिक संघर्ष के दौरान आपराधिक गतिविधियों पर नियंत्रण करने के प्रशासनिक व्यय में वृद्धि होती है। प्रोफेसर पीगू के शब्दों में, एक ओर काम बंदी में वास्तविक तौर पर शामिल लोगों को निर्धन बनाकर यह अन्य उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की माँग घटाता है; दूसरी ओर, यदि उद्योग अन्य उद्योगों के संचालन में मोटे तौर पर ज़रूरी वस्तु या सेवा प्रदान करते हैं तो इससे उन्हें कच्चा माल या उपकरणों की आपूर्ति में कमी आती है।

स्वतंत्रता के समय भारत को तीव्र औद्योगिक विकास की आवश्यकता थी। यह आवश्यकता अब भी बनी हुई है। उद्योगों का तेज़ी से विकास, औद्योगिक ढाँचे में विविधता लाने के साथ-साथ प्रौद्योगिकी व औद्योगिक उत्पादन के वैज्ञानिक आधार में परिवर्तन श्रमिकों को प्रदत्त काम की परिस्थितियों पर प्रभावी तौर पर निर्भर करते हैं। उद्योगों के निरंतर और तीव्र विकास के लिए साधनों का कुशल उपयोग आवश्यक है। उत्पादकता में निरंतर वृद्धि ज़रूरी है।

औद्योगिक संवृद्धि को अधिकाल में स्थिरता के साथ बनाए रखना होता है। यह सब औद्योगिक और सद्भावपूर्ण श्रम प्रबंधन संबंधों पर बहुत अधिक निर्भर है।

पिछले पाँच दशकों में भारत के औद्योगिक परिदृश्य में परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। प्रबंधन अब एक बिल्कुल अलग पेशे के रूप में उभरा है। प्रौद्योगिकी परिवर्तन हुए हैं। इन प्रौद्योगिकी परिवर्तनों ने कुछ समस्याएँ पैदा की हैं :

क) वर्तमान रोज़गार का फालतूपन, और

ख) वर्तमान श्रम शक्ति का आवश्यक दक्षता के साथ सामंजस्य।

भारत में विदेशी पूँजी प्रमुख घरेलू औद्योगिक घरानों के साथ सहयोग और स्वयं उनकी सहायक कम्पनियों, दोनों ही रूपों में आ रही है। इसका श्रमिकों पर कम से कम उस सीमा तक प्रभाव पड़ा है जहाँ तक वह विदेशी हित अपने साथ प्रबंध प्रणाली की नई लहरें लाए हैं और श्रम को पुरस्कृत करने व संभालने के नए मानकों से परिचय कराया है। इसके अतिरिक्त जुलाई 1991 से चल रहे नए आर्थिक सुधारों ने भी काम के माहौल और औद्योगिक संबंधों को विभिन्न रूप से प्रभावित किया है। इस इकाई में आगे जाकर हम इस पहलू पर विचार करेंगे।

उपरोक्त संदर्भ में हमारे लिए यह वांछनीय होगा कि हम भारत में हुए औद्योगिक विवाद के स्वरूप, औद्योगिक विवादों को सुलझाने की व्यवस्था, सामूहिक समझौता, प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी और आर्थिक सुधारों के बाद की अवधि में औद्योगिक संबंधों से जुड़ी समस्याओं की जानकारी हासिल करें।

बोध प्रश्न 1

1) किस प्रकार के औद्योगिक संबंध संवृद्धि और उत्पादिता को बढ़ावा देने में सहायक होते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) औद्योगिक संघर्ष का श्रमिकों पर किस प्रकार असर पड़ता है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) औद्योगिक संबंधों से हमारा क्या तात्पर्य है?

.....

.....

.....

21.3 भारत में औद्योगिक संबंधों में प्रमुख पक्ष

औद्योगिक संबंधों में दो प्रमुख पक्ष हैं :

क) श्रमिक संघ, और

ख) मालिकों के संघ।

औद्योगिक संबंधों में इन दो प्रमुख पक्षों के अलावा एक तीसरा पक्ष सरकार है जो (क) श्रमिकों के हितों की रक्षा करती है, और (ख) संघर्ष उत्पन्न होने पर उनके निपटाने में सहायक बनकर एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है :

21.3.1 श्रमिक संघ (यूनियन)

भारत में श्रमिक संघ आंदोलन एक शताब्दी से अधिक पुराना है। श्रमिक संघों को भारत के संविधान के अपनाए जाने के बाद प्रोत्साहन मिला। इसके अंतर्गत सभी नागरिकों को सार्वजनिक व्यवस्था के हितों के अधीन संघ बनाने का अधिकार दिया गया। यह श्रमिक संघ अपने अनेक कार्यों द्वारा सदस्यों के हितों की रक्षा करते हैं।

1990 के दशक के आरंभ में कुल कार्यशील जनसंख्या का लगभग 9 प्रतिशत संगठित था। 1990 में संघों की कुल संख्या 52,016 थी जिसके 61,81,000 सदस्य थे। यह संख्या 1951 की अपेक्षा 10 गुना से भी अधिक है। सार्वजनिक क्षेत्र में संघ निर्माण में अत्यधिक तीव्रता है और इसका अनुपात 90 प्रतिशत है जबकि निजी क्षेत्र, विशेषकर लघु और मध्यम स्तर की इकाइयों में यह कम है। पंजीकृत संघों का केवल पंचमांश (1/5) एक-दूसरे के साथ अथवा राष्ट्रीय स्तर पर दस प्रमुख महासंघों के साथ संबद्ध है।

भारत में श्रमिक संघों के कामकाज में अनेक कमज़ोरियाँ रही हैं। भारत में श्रमिक आंदोलन वैचारिक आधार पर विभाजित है। श्रमिक संघों के विभिन्न महासंघ दलगत आधार पर बनाए गए हैं। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC) स्वाधीनता के बाद से ही पूरी तरह कम्युनिस्टों के नियंत्रण में रहा है। भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (INTUC) कांग्रेस पार्टी से संबंधित है। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC) में विभाजन के फलस्वरूप समाजवादियों ने हिन्द मज़दूर सभा (HMS) की स्थापना की। हिन्द मज़दूर सभा में एक और विभाजन से गैर-कम्युनिस्ट मार्क्सवादी गुट ने यूनाइटेड ट्रेड यूनियन (UTC) का निर्माण किया। 1955 में जनसंघ पार्टी ने भारतीय मज़दूर संघ (BMS) का गठन किया। कम्युनिस्टों में विभाजन से अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC) में विभाजन हुआ जिससे 1970 में सेंटर ऑफ इण्डियन ट्रेड यूनियन्स (CITU) का जन्म हुआ। तमिलनाडू में डी.एम.के. और ए.आइ.ए.डी.एम.के. तथा महाराष्ट्र में शिव सेना जैसे क्षेत्रीय राजनीतिक दलों से संबंधित क्षेत्रीय महासंघों का भी प्रादुर्भाव हुआ है। इस प्रकार, श्रमिक आंदोलन के राजनीतिक आधार पर विभाजन से फूट पैदा हुई है और श्रमिक संघ आंदोलन कमजोर हुआ है। मालिक द्वारा श्रमिक संघ को मान्यता देने का कानूनी प्रावधान न होने के कारण काम के एक ही स्थान पर अनेक संघों का गठन किया जाता है जिनमें श्रमिकों के एक ही वर्ग का समर्थन प्राप्त करने के लिए आपसी होड़ मचती है और ऐसी स्पष्टता आमतौर पर तीखी कभी-कभी तो हिंसक भी हो जाती है। यह कहना कठिन है कि राष्ट्रीय स्तर पर कितने श्रमिक संघ कार्यशील हैं क्योंकि बहुत से संघों का किसी भी अखिल भारतीय संघ से संबंध नहीं है। बहरहाल, हाल में हुए अधिकांश विभाजन व्यक्तियों से और कभी-कभी जाति और क्षेत्रीय हितों से संबंधित रहे हैं।

सदस्यता के निम्न विस्तार और श्रमिक संघों के विभाजन के अलावा सदस्यता में गिरावट, श्रमिक संघों और श्रमिकों के बीच असंगति श्रमिक संघों की अन्य कमजोरियाँ हैं। कार्य प्रक्रिया के बदलते स्वरूप के कारण क्षेत्रीय स्तर पर संघों से उद्यम स्तर पर संघों के स्थानान्तरण की नई प्रवृत्ति उभरने लगी है।

श्रमिक संघ आजकल असमंजस में हैं। वह बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रवेश को पसंद नहीं करते परन्तु उनके द्वारा दिए जाने वाले ऊँचे वेतनमान और अन्य सुविधाओं से आकर्षित होते हैं। वह लघु उद्योग के विकास के पक्षधर हैं परन्तु बड़ी इकाइयों के काम को सहायक लघु उद्योगों को ठेके पर देने के विरोधी हैं। इसी प्रकार, श्रमिक संघ रुग्ण इकाइयों को बंद करने का विरोध करते हैं परन्तु घाटे वाले उद्यमों के रूप में उन्हें अनिश्चित काल तक चलाने को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। वह ढाँचागत सामंजस्य (structural adjustment) के रोज़गार और काम की परिस्थितियों पर प्रतिकूल प्रभावों का विशेष उल्लेख करते हैं परन्तु, सुधारों का विरोध नहीं करते।

21.3.2 मालिकों के संघ

अखिल भारतीय आधार पर मालिकों के तीन संघ हैं :

फिक्की (FICCI) नई दिल्ली द्वारा स्थापित मालिकों का अखिल भारतीय संगठन (AIOE)। एसोचैम (ASSOCHAM), मुम्बई द्वारा स्थापित भारतीय संगठन नियोक्ता संघ (EFI)। केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों द्वारा स्थापित नई दिल्ली का स्कोप (SCOPE)।

सरकार द्वारा अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के साथ संबंधों के लिए इन तीनों ने मिलकर एक संघबद्ध संगठन का गठन किया है जिसका नाम है भारतीय नियोक्ता परिषद् (Council of Indian Employers - CIE)। इन तीनों संगठनों के अलावा अखिल भारतीय निर्माता संगठन (All India Manufacturers' Organisation - IMO) नामक एक चौथा संगठन है जो निजी क्षेत्र के लघु और मध्यम स्तर के उद्यमों के हितों का प्रतिनिधित्व करता है। पाँचवाँ है भारतीय उद्योग परिसंघ (Confederation of Indian Industry - CII)। श्रम मंत्रालय ने इन दोनों संगठनों को भारतीय श्रम सम्मेलन (Indian Labour Conference) और अंतरराष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (International Labour Conference) समेत विभिन्न त्रिपक्षीय मंचों में अलग से प्रतिनिधित्व प्रदान किया है।

अखिल भारतीय नियोक्ता संगठन (AIOE) के सदस्यों की संख्या 160 से कम और भारतीय नियोक्ता संघ (EFI) की 240 से कम है। स्कोप (SCOPE) में केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की लगभग 95 प्रतिशत सदस्यता है।

21.3.3 सरकार

सरकार तीसरा प्रमुख तत्व है जो औद्योगिक संबंधों के क्षेत्र में श्रमिकों के हितों की रक्षा और औद्योगिक शांति सुनिश्चित करने में अत्यंत आवश्यक भूमिका निभाती है। उसने एक विस्तृत विधायी व्यवस्था का निर्माण किया है। भारतीय औद्योगिक संबंधों के स्वरूप निर्धारण में तीन महत्वपूर्ण विधेयकों की अहम भूमिका है। वह अधिनियम है : भारतीय श्रमिक संघ अधिनियम, 1926, औद्योगिक रोज़गार (स्थायी निर्देश) विधेयक, 1946 और औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947।

1926 का श्रमिक संघ अधिनियम संघों को वह बुनियादी न्यूनतम मान्यता प्रदान करता है, जिसके बिना उन्हें गैर-कानूनी करार दिया जा सकता है। इस कानून के अंतर्गत कोई सात

श्रमिक मिलकर श्रमिक संघ का निर्माण कर सकते हैं और श्रमिक संघों के रजिस्ट्रार से पंजीकरण की माँग कर सकते हैं। इस अधिनियम श्रमिक संघों द्वारा छोड़े विवादों से उठे दीवानी और फौजदारी मुकदमों में पंजीकृत संघों की रक्षा करता है।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 विधि निर्माण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है जिसका उद्देश्य समझौते, मध्यस्थता और अधिनिर्णय के ज़रिए श्रमिक और प्रबंधन के बीच किसी भी संघर्ष का तेज़ी से निपटारा करना है। इस अधिनियम के तहत किसी भी उद्योग में हड़ताल अथवा तालाबंदी की घोषणा से पहले 14 दिनों का नोटिस दिया जाना आवश्यक होता है। इस पर हम भाग 21.5 में विस्तार से विचार करेंगे।

औद्योगिक रोज़गार (स्थायी निर्देश) अधिनियम, 1946 के अंतर्गत एक सौ या अधिक श्रमिकों को काम में लगाने वाली प्रत्येक संस्था के लिए रोज़गार की शर्तों को परिभाषित करने वाले स्थायी निर्देशों की सूची रखना आवश्यक है। यह स्थायी निर्देश श्रमिकों के वर्गीकरण, पालियों, उपस्थिति, अनुशासन, रोज़गार से बर्खास्तगी और शिकायत प्रक्रिया से संबंधित होते हैं। इन सबका यथोचित सीमा तक सरकार द्वारा बनाए गए आदर्श स्थायी निर्देशों के अनुरूप होनी ज़रूरी है। अधिनियम यह सुनिश्चित करता है कि श्रमिकों को दिया गया रोज़गार कुछ न्यूनतम सुविधा के साथ हों।

सरकार ने अनेक कानूनी उपायों से, जिनमें विशेष रूप से विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत औद्योगिक श्रमिकों के काम की परिस्थितियाँ शामिल हैं, श्रमिकों के काम की शर्तों का नियमन भी किया है। उदाहरण के लिए, फ़ैक्टरी अधिनियम, 1948 उन सभी औद्योगिक संस्थाओं में, सेवा और काम की शर्तों को नियमित करता है, जहाँ दस या उससे अधिक श्रमिक काम करते हैं और पावर का उपयोग किया जाता है (अन्य सभी किस्म की औद्योगिक संस्थाएँ जहाँ बीस या अधिक श्रमिक काम करते हैं)। अधिनियम श्रमिकों के स्वास्थ्य, सुरक्षा और कल्याण से जुड़ी न्यूनतम सुविधाओं से संबंधित है। इसी प्रकार कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948; बोनस अदायगी अधिनियम, 1965 आदि औद्योगिक संस्थाओं में परिस्थितियों को नियमित करने के कानूनी उपायों के उदाहरण हैं। औद्योगिक विवाद (बैंक और बीमा) अधिनियम, 1949; विभिन्न राज्यों के दुकान और संस्थापन अधिनियम इत्यादि उद्योग विशेष से संबंधित उपायों के उदाहरण हैं।

उपरोक्त के अलावा, असंगठित, श्रमिकों (जो कुल श्रमिकों का 91.5 प्रतिशत हैं) के हितों की रक्षा के लिए बहुत से उपाय किए गए हैं। इनमें शामिल हैं : न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम, 1948; बंधुआ मज़दूर प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976; बाल मज़दूर निषेध और नियमन अधिनियम, 1986 इत्यादि। न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम, 1948 के अंतर्गत राज्य और केंद्र सरकार विभिन्न वर्गों के श्रमिकों के लिए न्यूनतम मज़दूरी की अधिसूचना जारी करते हैं। बागान श्रम अधिनियम, 1951 बागान श्रमिकों को कुछ बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध करवाता है। बंधुआ मज़दूर प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976; बंधुआ मज़दूर प्रथा का उन्मूलन करने और उन मज़दूरों को मुक्त कराने का प्रयास करता है जो बंधक ऋण लेने के कारण बिना मज़दूरी के या नाममात्र की मज़दूरी पर बंधुआ श्रम प्रदान करते हैं। असंगठित श्रमिकों की प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले अन्य उपाय हैं : केरल कृषि श्रमिक अधिनियम, 1974; विभिन्न राज्यों की पेंशन व्यवस्थाएँ। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि 1991 से अपनाई गई नई आर्थिक नीति निगम क्षेत्र के विकास में सहायक हो सके निकट भविष्य में असंगठित श्रमिकों की काम की परिस्थितियों को सुधारने में सरकार की निर्णायक भूमिका आवश्यक है।

21.4 भारत में औद्योगिक विवाद

काफी हद तक श्रम और प्रबंधन के हित एक-दूसरे के विपरीत होते हैं। दैनिक कार्य-कलाप से उभरे कई मामलों पर उनमें आपसी संघर्ष होता है। मज़दूरी और काम की परिस्थितियों

के अलावा काम के बँटवारे, काम के तरीके, सुरक्षा, छँटनी निर्णय लेने में भागीदारी और ऐसे ही विषयों को लेकर मतभेद पैदा होते हैं। श्रमिकों की ओर से विरोध और असंतोष कई माध्यमों से व्यक्त किए जाते हैं जैसे कि हड़ताल, बायकॉट, तोड़फोड़, काम में धीमापन, जानबूझकर समय और माल जाया करना, इत्यादि। इसी प्रकार मालिक अपना असंतोष तालाबंदी, अस्थायी छँटनी, निलंबन और बर्खास्तगी के जरिए व्यक्त करते हैं।

हालाँकि भारत में दोनों पक्ष (श्रम और प्रबंधन) विवाद निपटाने के लिए उपरोक्त उपायों का सहारा लेते हैं, सामान्य तौर पर संघर्ष को हड़तालों और तालाबंदियों से ही जोड़ा जाता है और संघर्ष के इन्हीं दो रूपों के विषय में आँकड़े उपलब्ध हैं।

21.4.1 औद्योगिक विवाद की प्रवृत्तियाँ

औद्योगिक विवादों में श्रमिकों के शामिल होने और श्रम-दिवसों के नुकसान होने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति देखने में आती है। हड़तालों और तालाबंदियों के कारण श्रम-दिवसों के नुकसान के तौर पर पिछले साढ़े चार दशकों के औद्योगिक विवादों का अध्ययन तीन उप-अवधियों में बाँटकर किया जा सकता है:

- अवधि I 1975 तक,
- अवधि II 1976-80 तक,
- अवधि III 1980-97 तक।

अवधि I (1975 तक) : औद्योगिक विवादों में श्रमिकों के शामिल होने और श्रम-दिवसों के नुकसान की प्रवृत्ति बढ़ती रही है। श्रम-दिवसों का नुकसान 1951 में 38 लाख से बढ़कर 1961 में 49 लाख, तथा 1971 में 149 लाख हो गया। इस अवधि में औद्योगिक विवादों में हड़तालों की प्रधानता रही। 1961-75 की अवधि में हड़तालों के कारण श्रम-दिवसों का हुआ नुकसान कुल नष्ट श्रम-दिवसों के 60 से 84 प्रतिशत के परिसर में रहा। इसके विपरीत तालाबंदियों का अंश 16 से 40 प्रतिशत के बीच रहा।

यदि हड़तालों या तालाबंदियों की तीव्रता की माप

- क) शामिल श्रमिकों की संख्या—
- ख) हड़तालों या तालाबंदियों की अवधि—
- ग) हड़तालों या तालाबंदियों में नष्ट श्रम-दिवस—

के आधार पर की जाए तो इस अवधि में तालाबंदी की तुलना में हड़तालों की तीव्रता अधिक रही।

आँकड़ों से ज्ञात होता है कि 1961-75 की अवधि में औसतन एक श्रमिक 8.8 दिन हड़ताल में हासिल रहा जबकि इसके विपरीत 28 दिन तालाबंदी में। इस प्रकार 1961-75 के दौरान तालाबंदियों की तीव्रता हड़तालों की उपेक्षा तीन गुना अधिक रही।

अवधि II (1976-80) : 1975 में आपातकाल के साथ ही आंतरिक सुरक्षा रख-रखाव अधिनियम (MISA) और भारत प्रतिरक्षा नियमों (DIR) के लागू हो जाने के कारण औद्योगिक विवाद कम हुए। श्रमिकों के प्रति मालिकों की उग्रता बढ़ गई और तालाबंदियों के कारण नष्ट श्रम-दिनों का प्रतिशत 1974 में 16.4 से बढ़कर 1975 में 23.7 प्रतिशत और 1976 में 78 प्रतिशत हो गया जबकि हड़तालों के कारण श्रम-दिवसों के नुकसान का

अनुपात 1974 में 83.6 प्रतिशत, 1975 में 76.3 प्रतिशत और 1976 में 22 प्रतिशत रहा।

1977 और 1979 के बीच जनता दल शासन के दौरान स्थिति बदल गई। तुलनात्मक तौर पर कुल नष्ट श्रम-दिवसों के 82 प्रतिशत का हड़तालों के कारण नुकसान हुआ जबकि तालाबंदियों के कारण मात्र 18 प्रतिशत रहा।

अवधि III (1980-97) : 1980 से, विशेष रूप से 1984-85 के बाद, औद्योगिक विवादों के स्वरूप में परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अब हड़ताल की बजाय तालाबंदी अपना प्रमुख स्थान बना रही है।

1991 के आर्थिक सुधार के बाद भारतीय औद्योगिक विकास में निजी क्षेत्रकों को प्राथमिकता दी गई। निजी क्षेत्रक में अधिक संवृद्धि तथा उत्पादिता के लिए कई तरह की प्रोत्साहन दिया गया है। इस दौरान श्रम दिवसों के नुकसान में तालाबंदी का हिस्सा बढ़ने लगा और 1993 में यह 72.3 प्रतिशत तक जा पहुँचा। दूसरी ओर, हड़ताल का प्रतिशत घटने लगा और 1992 की 48.4 प्रतिशत से 1993 में 27.7 प्रतिशत रह गया। 1997 में यह थोड़ा-सा बढ़कर 33.7 प्रतिशत पहुँच गया।

आर्थिक सुधार के 7 वर्षों के दौरान श्रम-दिवसों के नुकसान में हड़ताल का हिस्सा 39 प्रतिशत था जबकि तालाबंदी का हिस्सा 61 प्रतिशत। इससे पता चलता है कि आर्थिक सुधारों के दौरान श्रमिकों को अपनी माँग मनवाने की पहले मिल रही सुविधा में कमी आ गई।

तालिका 21.1 : हड़तालों और तालाबंदियों में शामिल श्रमिकों और नष्ट श्रम-दिवसों की तुलना

वर्ष	विवादों की संख्या			शामिल श्रमिकों की संख्या (000) में		
	हड़ताल	तालाबंदी	कुल	हड़ताल	तालाबंदी	कुल
1961-75	32304 (100.0)	3910 (89.2)	36214 (10.8)	19620 (100.0)	2274 (89.6)	21984 (10.4)
1976-90	25324 (100.0)	5188 (83.0)	30512 (17.0)	18626 (100.0)	3144 (85.6)	21770 (14.4)
1991-97	5769 (100.0)	3184 (64.44)	8953 (35.56)	27856 (100.0)	14773 (65.34)	42629 (34.66)

स्रोत : i) 1976-90 तक— तालाबंदी, बंदी और सरकार की भूमिका, प्रोफेसर रुद्र दत्त।

ii) 1991-97 के आँकड़े श्रम मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट, 1997-98 से संकलित किए गए हैं।

21.4.2 सार्वजनिक और निजी क्षेत्र में औद्योगिक संबंध

i) औद्योगिक विवादों में शामिल श्रमिकों का अनुपात

1973 के बाद दोनों सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में औद्योगिक विवादों में शामिल की कुल संख्या में गिरावट की प्रवृत्ति देखने में आई है। 1978 से 1986 के बीच औद्योगिक विवादों में शामिल श्रमिकों का अनुपात निजी क्षेत्र की उपेक्षा सार्वजनिक क्षेत्र में काफी कम था (1983 को छोड़कर, जब श्रमिकों का अनुपात सार्वजनिक क्षेत्र में थोड़ा अधिक था)। 1986 के बाद यह प्रवृत्ति उलट गई और सार्वजनिक क्षेत्र में औद्योगिक विवादों में शामिल श्रमिकों

का अनुपात निजी क्षेत्र से बहुत ऊँचा रहा।

ii) नष्ट श्रम-दिवसों और विवाद में शामिल श्रमिकों की संख्या

1973 से नष्ट श्रम-दिवसों की संख्या के मामले में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा निजी क्षेत्र की अपेक्षा लगातार कम रहा है। 1995 में यह सार्वजनिक क्षेत्र के लिए करीब 25% था जबकि निजी क्षेत्र में यह अनुपात 75% था।

यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र में नष्ट श्रम-दिवसों की संख्या निजी क्षेत्र की अपेक्षा बहुत कम थी, फिर भी सार्वजनिक क्षेत्र में विवाद में शामिल औसतन श्रमिकों की संख्या निजी क्षेत्र से ज्यादा रही। सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में बड़े कार्यकलापों जैसे— बीमा, रेल, डाक और तार विभाग की व्यवस्था होने के कारण इन प्रतिष्ठानों में लगी श्रम शक्ति का आकार भी बहुत बड़ा है। अतः हड़तालों से बड़ी संख्या में श्रमिक प्रभावित होते हैं।

iii) नष्ट श्रम-दिवसों की संख्या

सार्वजनिक क्षेत्र में प्रति श्रमिक औसतन नष्ट श्रम-दिवसों की संख्या निजी क्षेत्र की अपेक्षा बहुत कम रही है। विवाद को सुलझाने में सार्वजनिक क्षेत्र में निजी क्षेत्र के मुकाबले कम समय की आवश्यकता होती है। इसका कारण निजी क्षेत्र के रवैये और सोच में भिन्नता है। निजी क्षेत्र के उद्योगपतियों को लगता है मजदूरी, बोनस अथवा परिलब्धियों में किसी भी वृद्धि का उनके लाभ पर सीधा प्रभाव पड़ेगा। इसमें समझौते की बातचीत लम्बी हो जाती है। इसके विपरीत सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के श्रमिकों की माँगें स्वीकार कर लेती है क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र में ढाँचागत क्षेत्र के उद्योग शामिल होने के कारण हड़ताल के जारी रहने से अर्थव्यवस्था के बड़े खंडों पर प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि निजी क्षेत्र में विवादों की संख्या अधिक होती है। निजी क्षेत्र में उत्पन्न विवादों में नष्ट श्रम-दिवसों और विवाद में शामिल श्रमिकों की औसत संख्या से हमें पता चलता है कि निजी क्षेत्र में उत्पन्न विवादों की तीव्रता अधिक है। समझौते की व्यवस्था निजी क्षेत्र की अपेक्षा सार्वजनिक क्षेत्र में कहीं ज्यादा काम करने लगती है।

बोध प्रश्न 2

1) श्रमिक महासंघ (यूनियन) और मालिकों के संघ के तीन-तीन उदाहरण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) भारत में श्रमिक संघों की तीन कमजोरियाँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

3) 1975 तक की अवधि और 1980-97 के बीच औद्योगिक विवादों के स्वरूप में क्या भिन्नता आई है?

.....
.....
.....
.....
.....

4) सही कथन पर निशान लगाइए।

तालाबंदी के कारण औद्योगिक विवादों का बढ़ता हिस्सा दिखाता है :

- 1) मालिकों की उग्रता
- 2) श्रमिकों की उग्रता
- 3) सरकार की उग्रता

21.5 औद्योगिक विवादों का निपटारा

औद्योगिक विवादों को निपटाने के दो अंग हैं :

- i) निवारण, और
- ii) समझौता।

विवादों के निवारण के अंतर्गत ऐसी व्यवस्था की जाती है कि मतभेद हड़ताल या तालाबंदी का रूप धारण न करें। समझौते के अंतर्गत प्रबंधन और श्रमिकों के बीच विवादों को निपटाने की व्यवस्था की जाती है।

21.5.1 विवादों का निवारण

विवादों के निपटाने और सद्भावनापूर्ण औद्योगिक संबंधों के लिए तीन स्तरों पर परामर्श व्यवस्था प्रदान की गई है : राष्ट्रीय स्तर और उद्यम स्तर।

क) **त्रिपक्षीय परामर्श** : सर्वोच्च श्रेणी पर भारतीय श्रम सम्मेलन (ILC) और स्थायी श्रम सम्मेलन (SLC) के ज़रिए त्रिपक्षीय परामर्श की व्यवस्था की गई है। राष्ट्रीय स्तर पर 44 त्रिपक्षीय समितियाँ हैं। इन त्रिपक्षीय समितियों के उद्देश्य हैं :

- श्रम कानूनों में एकरूपता को बढ़ावा देना
- औद्योगिक विवादों को निपटाने की प्रक्रिया निर्धारित करना
- मालिकों और कर्मियों के बीच अखिल भारतीय महत्त्व के सभी मामलों पर विचार-विमर्श करना।

त्रिपक्षीय निकायों की सिफारिशों के कार्यान्वयन के क्षेत्र में कमज़ोरी पाई गई है। 1970 के दशक के आते ही त्रिपक्षीय बैठकें दुर्लभ हो गईं। 1980 के दशक में अनेक अवसरों पर श्रमिक यूनियनों के अनेक महासंघ त्रिपक्षीय बैठकों का बहिष्कार करने लगे।

ख) कम्पनी और प्लांट स्तर पर परामर्श : स्वतंत्रता के बाद से कम्पनी और प्लांट स्तर पर श्रमिकों की भागीदारी परामर्श प्रदान करने के लिए कई स्कीमों का सूत्रपात किया गया। इनमें शामिल हैं :

- i) **कार्य समितियाँ, 1947** : औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अंतर्गत द्विपक्षीय कार्य समितियों में श्रमिकों के निर्वाचित प्रतिनिधियों के भागीदारी की सीमित व्यवस्था है। कार्य समितियों के गठन का उद्देश्य मालिकों और श्रमिकों के बीच मैत्री और अच्छे संबंधों को सुनिश्चित करने और बनाए रखने के उपायों को बढ़ावा देना है। परंतु इन समितियों का कामकाज संतोषजनक नहीं रहा है।
- ii) **संयुक्त प्रबंधन परिषद् (JMC) 1958** : संयुक्त परिषदों की स्थापना 1958 में की गई। इनसे कल्याण, सुरक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और छुट्टियों की सूचियाँ बनाना जैसे विभिन्न विषयों पर प्रशासनिक उत्तरदायित्व निभाने की आशा की गई थी। कार्य प्रणालियों में परिवर्तन, विभिन्न स्थायी निर्देशों का सूत्रपात संशोधन, पुनर्गठन, उत्पादिता आदि विभिन्न विषयों पर इनसे परामर्श भी किया जाता था। बहुपक्षीय परामर्श निकायों की बहुलता के कारण संयुक्त प्रबंधन परिषदों को न तो श्रमिक संघों का अधिक समर्थन मिला और न ही प्रबंधन का।

21.5.2 विवादों का निपटारा प्रणाली

श्रम प्रबंधन विवाद को सुलझाने के कई प्रावधान हैं :

1) समझौता अधिकारी

सरकार विशिष्ट क्षेत्रों और उद्योगों के लिए समझौता अधिकारियों को नियुक्त करती है। यह अधिकारी दोनों पक्षों को मिलाकर मतभेदों को निपटाने में उनकी सहायता करते हैं। यदि उनके प्रयासों से विवाद निपट जाता है और समझौता हो जाता है तो इस आशय की रिपोर्ट सरकार को भेज दी जाती है। विवाद को निपटाने में असफल होने की स्थिति में अधिकारी सरकार को उसके द्वारा किए गए उपायों और असफलता के कारणों की जानकारी देता है।

2) समझौता बोर्ड

सरकार अपने ही द्वारा प्रेषित किसी भी औद्योगिक विवाद की जाँच के लिए समझौता बोर्ड नियुक्त कर सकती है। बोर्ड में एक अध्यक्ष और मालिकों तथा श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने वाले दो अथवा चार व्यक्ति शामिल होते हैं। अध्यक्ष एक स्वतंत्र व्यक्ति होता है। बोर्ड सरकार को समाधान के लिए किए गए उपायों और समझौता कराने में अपनी असफलता समेत अपने प्रयासों की सफलता या असफलता की रिपोर्ट प्रस्तुत करता है।

3) जाँच अदालत

यदि समझौता अधिकारी और समझौता बोर्ड औद्योगिक विवाद को नहीं निपटा पाते हैं तो मामले को जाँच अदालत भेज दिया जाता है। अदालत पूरे प्रकरण की जाँच करता है और सरकार के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करता है। बाद में मामले को अधिनिर्णय के लिए औद्योगिक ट्रिब्यूनल भेज दिया जाता है।

4) श्रम अदालतें

मालिकों के विवादास्पद निर्देशों, प्रबंधन द्वारा श्रमिकों की बर्खास्तगी और निलंबन, हड़तालों

और तालाबंदियों की कानूनी वैधता आदि विषयों पर विचार करने के लिए राज्य सरकारों ने श्रम अदालतों का गठन किया है। श्रम अदालतों से मामले पर शीघ्रता से निर्णय देने की अपेक्षा की जाती है।

5) औद्योगिक ट्रिब्यूनल

औद्योगिक ट्रिब्यूनल दो प्रकार के होते हैं : राज्य ट्रिब्यूनल और राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल। राज्य ट्रिब्यूनलों की नियुक्ति राज्य सरकारों द्वारा मज़दूरी, बोनस आदि से जुड़े विवादों पर अधिनिर्णय के लिए की जाती है। राष्ट्रीय ट्रिब्यूनलों की नियुक्ति केंद्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व के ऐसे औद्योगिक विवादों में अधिनिर्णय के लिए की जाती है जिनका प्रभाव एक से अधिक राज्यों में स्थित औद्योगिक संस्थाओं पर पड़ता है। राज्य और राष्ट्रीय ट्रिब्यूनलों का अधिनिर्णय संबंधित पक्षों के लिए अनिवार्य होता है।

विवादों को निपटाने की उपरोक्त प्रणालियों के अलावा हाल के वर्षों में निम्नलिखित प्रक्रियाएँ आम हो गई हैं:

1) **अनुशासन संहिता** : 1958 में भारतीय श्रम सम्मेलन ने उद्योगों के लिए एक अनुशासन संहिता विकसित की। इस संहिता के अंतर्गत मालिक और श्रमिक स्वैच्छिक रूप से कारखाने में आपसी विश्वास और सहकारिता का माहौल बनाए रखने और सभी विवाद और शिकायतें आपसी बातचीत, समझौते और स्वैच्छिक अधिनिर्णय से तय करने और अप्रत्यक्ष कार्यवाही न करने पर राज़ी हुए।

2) **औद्योगिक संधि** : मालिकों और श्रमिकों के संगठन की संयुक्त बैठक ने नवंबर 1962 में एक औद्योगिक संधि प्रस्ताव को पारित किया। मालिकों और श्रमिकों के बीच इस बात पर सहमति हुई कि देश में आपातकाल के दौरान उत्पादन के अधिकतम स्तर को प्राप्त करने के प्रयास किए जाएँगे। 1988-92 की अवधि के दौरान 19,744 औद्योगिक विवादों में से 8,478 (42.5%) का आपसी समझौते से समाधान किया गया और 3501 (31%) का अधिनिर्णय और मध्यस्थता के ज़रिए सरकारी हस्तक्षेप के द्वारा निपटारा किया गया। लगभग 22% विवादों को अधिनिर्णय के अयोग्य पाया गया।

3) **राष्ट्रीय मध्यस्थता संवर्द्धन मंडल** : सरकार ने इस मंडल का औद्योगिक विवादों को निपटाने के लिए व स्वैच्छिक मध्यस्थता को बढ़ावा देने के लिए जुलाई, 1967 में गठन किया। मंडल इस बात का सुनिश्चित करने का प्रयास करता है कि मालिक और श्रमिक औद्योगिक विवादों के निपटाने में स्वैच्छिक प्रस्तावों का अधिक सहारा लें।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित विकल्पों में सही उत्तर का चयन कीजिए :

क) भारत में औद्योगिक संबंधों में सरकार की भूमिका का स्वरूप रहा है :

- 1) नियमनकारी
- 2) समर्थनकारी
- 3) उदासीन

2) त्रिपक्षीय परामर्श का मुख्य उद्देश्य क्या है?

.....

.....

3) भारत में श्रम-प्रबंधन विवादों को निपटाने की प्रणाली के प्रमुख अंग क्या हैं?

21.6 सामूहिक समझौता

सामूहिक समझौता वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मालिक (या मालिकों) और श्रमिकों का एक दल काम की शर्तों पर राजी होते हैं। यह संयुक्त रूप से निर्णय लेने की प्रक्रिया है और मोटे तौर पर उद्योग के कामकाज में लोकतांत्रिक पहलू का चित्रण करती हैं। यह उत्पादन के कार्यकलापों में रुकावट के बिना औद्योगिक शांति की स्थापना में सहायता करती हैं।

सामूहिक समझौते की सफलता के लिए निम्नलिखित शर्तें जरूरी हैं :

- शक्तिशाली लोकतांत्रिक संघ
- श्रमिक संघों को मालिकों की मान्यता
- समझौते में ईमानदारी
- मालिकों और श्रमिकों के बीच समझौते को आपसी मान्यता

स्तर

उद्योग स्तर : उद्योग स्तर पर समझौता सामान्य रूप से मूल उद्योगों में देखा जाता है जो सार्वजनिक क्षेत्र में केंद्रित है। इनमें कोयला, इस्पात, बैंक, बीमा, बंदरगाह आदि क्षेत्र शामिल हैं।

उद्योग तथा क्षेत्र स्तर : इस स्तर पर समझौता उन उद्योगों में पाए जाते हैं जहाँ निजी क्षेत्र की प्रधानता है। इनमें कपड़ा, बागान और इंजीनियरिंग क्षेत्र शामिल हैं।

प्लांट स्तर : बहुप्लांटों में समझौता दो चरणों में होता है। मूल मजदूरी दरों और कुछ सुविधाओं पर कम्पनी स्तर पर निर्णय लिया जाता है। कुछ भत्तों और प्रलोभनों के बारे में प्लांट स्तर पर बातचीत की जाती है। साधारणतः देशव्यापी समझौतों का प्लांट स्तर के समझौतों से अनपूरण किया जाता है।

विषय : मजदूरी और काम की शर्तें सामूहिक समझौतों के कार्यक्षेत्र में आती रही हैं। परंतु पिछले कुछ वर्षों में भर्ती से लेकर सेवानिवृत्ति तक और उसके उपरांत के भत्ते भी समझौतों का अंग बन गए हैं।

अवधि : 1920 के दशक के मध्य तक मजदूरी समझौते तीन वर्ष के लिए होते थे। 1990 के दशक में सरकार ने इनकी अवधि पाँच वर्ष निर्धारित की है।

21.6.1 भारत में सामूहिक समझौते की स्थिति

भारत में सामूहिक समझौते के क्षेत्र में श्रमिक संघों और नियोक्ता संघों के राष्ट्रीय महासंघों की भूमिका अहमदाबाद मिल मालिक संघ, बम्बई मिल मालिक संघ, भारतीय चीनी मिल संघ जैसी छोटी संस्थाओं तक ही सीमित रही हैं। कुछ औद्योगिक केंद्रों में श्रमिक संघों और मालिकों दोनों ने ही सामूहिक समझौते से जुड़े मामलों में सामूहिक रणनीति अपनाने के लिए समन्वय समितियों का गठन किया है।

बहुप्लांट कम्पनियों में यूनियनों की संख्या अधिक होने के कारण समझौते का स्वरूप सामूहिक होने के बजाय जबरन हो गया है। सार्वजनिक क्षेत्र में स्वरूपता के नाम पर समझौते प्रतियोगी हो गए हैं।

हाल के वर्षों में आर्थिक संकट और उत्पादकता के स्तर में सुधार की आवश्यकता के कारण सामूहिक समझौते में अनेक नवीन प्रस्ताव देखने में आए हैं। उदाहरण के तौर पर, रुग्ण फर्मों (sick firms) को बचाने और रोज़गार की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए यूनियन और प्रबंधन मजदूरी और रोज़गार में कटौती, मजदूरी की अपरिवर्तनशीलता, हड़ताल और श्रमिक संघों की अन्य कार्यवाहियों का एक अवधि तक स्थगन, कार्य प्रणाली में परिवर्तन, कार्य शक्ति की तैनात करने में लोचशीलता जैसी विभिन्न रियायतों पर राजी होने लगे हैं। इस दौर में कुछ संघ अपने मालिकों से अनेक वर्षों तक अनियमित रहे मजदूरों की सेवाएँ नियमित करने का आश्वासन प्राप्त करने में भी सफल रहे हैं। फर्म एक या अनेक रणनीतियाँ अपनाकर संघों को शामिल किए बिना पुनर्गठन (restructuring) करने लगे हैं। कई फर्म पुनर्गठन की नीचे दी गई किस्मों के समझौते करने लगे हैं :

- 1) किसी काम को समझौते की श्रेणी से स्थानान्तरित कर सामान्य श्रेणी में डालना,
- 2) भर्ती पर पाबंदी,
- 3) उत्पादन का शिकमी (sub-contract) ठेके की इकाइयों को अंतरण,
- 4) समानांतर उत्पादन शुरू करना,
- 5) स्थायी पदों को ठेके, अनियत और अस्थायी किस्म के श्रमिकों में बदलना,
- 6) स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीमों को शुरू करना,
- 7) लोचशीलता और उत्पादिता,
- 8) स्वचालित यंत्रों का प्रयोग,
- 9) आय संशोधन के विचार-विमर्शों में प्रबंधन के प्रस्ताव,
- 10) व्यवसाय की बिक्री,
- 11) प्लांट स्तर पर पुनर्गठन।

सामूहिक समझौते में असाधारण और अपरंपरागत शर्तों को शामिल किया जाता है। इन शर्तों में शामिल है : आयु भेद, आश्रितों की परिभाषा में लिंग भेद, मँहगाई भत्तों को उत्पादिता से जोड़ना, ठेके के श्रमिकों के लिए स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की स्कीम, शिकमी ठेके, दो श्रेणियों की मजदूरी प्रणालियाँ, आदि।

21.7 प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी

व्यापक तौर पर प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी का अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा श्रमिक ऐसे निर्णयों को लेने या प्रभावित करने का अधिकार रखते हैं जिनका उनपर या

21.7.1 प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी के उद्देश्य

मोटे तौर पर मूल उद्देश्य हैं :

- 1) संगठन के प्रत्येक श्रमिक को उसके सफल संचालन में अधिकतम योगदान करने के लिए प्रेरित करना और उसे महसूस कराना कि वह संगठन का ही अंग है।
- 2) दोनों पक्षों की मनोवृत्ति में सघर्ष के बजाय सहयोग के प्रति परिवर्तन लाना।
- 3) एक-दूसरे की कमजोरियों के बजाय ताकत के साथ काम करने की प्रणाली का विकास करना।

21.7.2 प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी की सफलता की पूर्वापेक्षाएँ

- प्रबंधन और श्रमिकों के बीच आपसी विश्वास और सहकारिता
- उचित औद्योगिक वातावरण
- शोषण/स्वार्थ की अनुपस्थिति
- लगावट की भावना
- दोनों ओर मुक्त संचार तथा सूचना आदान-प्रदान
- मनोवृत्ति में परिवर्तन
- चुनौतियों/बदलते वातावरण के साथ बदलने की इच्छा शक्ति

21.7.3 भारत में प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी

श्रमिकों की प्रबंधन के बारे में सबसे पहले गाँधी जी ने कल्पना की जब उन्होंने कहा कि उद्योग श्रम और पूँजी का संयुक्त प्रयास है जिससे मालिक और श्रमिक दोनों ही समाज के सहन्यासी (co-trustees) हैं। औपचारिक तौर पर श्रमिकों की प्रबंधन में भागीदारी के विचार को पहली बार उस समय स्वीकार किया गया जब दूसरी पंचवर्षीय योजना में इसकी जरूरत को पहचाना गया। तीसरी योजना में प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी के उत्तरोत्तर विस्तार को समर्थन दिया गया। चौथी योजना ने सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में इनके फैलाव की हिमायत की और औद्योगिक संबंधों के ढाँचे के अनिवार्य क्रियात्मक कड़ी के रूप में इसके महत्त्व पर बल दिया।

भारतीय श्रम सम्मेलन की 1957 और 1990 की क्रमशः 15वीं और 20वीं बैठक ऐतिहासिक हैं जिनमें ऐसी नई व्यवस्था को खोजने की आवश्यकता पर बल दिया जो सामाजिक न्याय और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की माँग और आधुनिक औद्योगिक विकास व प्रौद्योगिकी के बीच सामंजस्य पर आधारित हो। प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी इसी दिशा में एक कदम था।

21.7.4 प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी की व्यवस्था

प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी को आपसी समझौतों, वैधानिक और गैर-वैधानिक समितियों, परिषदों और शेयरों में भागीदारी के ज़रिए कार्यान्वित किया जाता है।

- i) आपसी समझौते : मालिकों और श्रमिक संघों के बीच मजदूरी, वेतनमान, भर्ती नीति, तरक्की नीति, रिटायरमेंट नीति, रिटायरमेंट लाभ जैसी सेवा शर्तों पर आपसी समझौते किए जाते हैं।

ii) **वैधानिक समितियाँ** : विभिन्न अधिनियमों के अंतर्गत अलग-अलग कार्यों के लिए समितियों के गठन का प्रावधान किया गया है। इन समितियों के नाम और इनके गठन से संबंधित अधिनियम निम्नलिखित हैं :

क) **कार्य समिति** : औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के तहत

ख) **कैंटीन समिति** : कारखाना अधिनियम 1948 के तहत

ग) **सुरक्षा समिति** : कारखाना अधिनियम 1948 के तहत

घ) **ई.पी.एफ. स्कीम में न्यासी** : कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम 1948 के तहत

ङ) **अनुशासन सुधार समिति** : औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के तहत

iii) **गैर-वैधानिक समितियाँ** : कुछ संगठन अपनी नीतिगत निर्णय निर्धारण समितियों में श्रमिकों के कुछ प्रतिनिधियों को भी शामिल कर लेते हैं। श्रमिकों को निम्नलिखित स्तरों पर नामांकित किया जाता है :

क) बोर्ड स्तर

ख) संयुक्त प्रबंधन परिषद्

ग) प्लांट परिषद्

घ) दुकान परिषद्

iv) **ऐच्छिक** :

क) अंशधारी (शेयरों में भागेदारी)

ख) मनोरंजनात्मक कार्यकलाप

इन सब प्रयासों के बावजूद प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी का देश में औद्योगिक संबंधों पर विशेष असर नहीं पड़ा है। प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी के कमजोर कार्यान्वयन के मूल कारण हैं :

- यूनियन के भीतर तथा विभिन्न यूनियनों के बीच प्रतिस्पर्द्धा और श्रमिक यूनियन के अधिकारों और उत्तरदायित्वों का उल्लंघन
- सूचना के मुक्त प्रवाह का अभाव
- उचित कार्य संस्कृति के विकास के लिए पहल का अभाव
- भारत में प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी स्कीम की गंभीर कमजोरी यह है कि इसे सरकारी तौर पर उत्प्रेरित और प्रायोजित किया गया। ऐसी स्कीमों के लिए न तो श्रमिक यूनियनों की ओर से दबाव था न ही प्रबंधन ने कभी कोई पहल की।

21.8 आर्थिक सुधार और औद्योगिक संबंधों में कठिनाइयाँ

श्रम बाज़ार में सुधार सम्पूर्ण आर्थिक सुधारों के पैकेज का एक अंग है। अतः बाज़ार को लोचशील बनाने की माँग की जा रही है ताकि वह बाज़ार के संकेतों पर अधिक कुशलता से प्रतिक्रिया व्यक्त करे। न्यूज़ीलैंड और आस्ट्रेलिया जैसे कुछ देशों ने श्रम बाज़ार में इसी

तरह के सुधारों की शुरुआत की है। इन देशों को बेरोज़गारी के भारी बोझ, वास्तविक मज़दूरी में गिरावट और प्रतिकूल भुगतान-शेष (Balance of Payment) का सामना करना पड़ रहा है। इसके अलावा अभी भी स्पष्ट नहीं है कि इन परिवर्तनों के फलस्वरूप इन अर्थव्यवस्थाओं के निष्पादन में सुधार हुआ है कि नहीं।

- 1) श्रम बाज़ार में लोचशीलता से रोज़गार कम होता है, रोज़गार के किस्म में गिरावट आती है और ऊँचे पैमाने के उद्योगों को श्रम लागत को कम करने के लिए अपने उत्पादन का एक हिस्सा छोटे उद्योगों को शिकमी ठेके पर देने का प्रोत्साहन मिलता है। इन सभी के कारण श्रमिक संघ कमजोर होते हैं, श्रमिकों के शोषण की गुंजाइश बढ़ती है और इस प्रकार औद्योगिक संबंधों को भारी चोट पहुँचती है। अतः श्रम बाज़ार में ऐसी लोचशीलता लाना जिससे उत्पादक रोज़गार बढ़े, रोज़गार की किस्म में सुधार हो और शोषण से बचा जा सके अपने आप में एक कठिन काम है।
- 2) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को आकर्षित करने के लिए औद्योगिक संबंधों की पद्धति में परिवर्तनों की माँग की जा रही है। इस संदर्भ में, कुछ देशों में निर्यात संसाधन क्षेत्रों का गठन किया गया है जो व्यापार नियंत्रणों से मुक्त होते हैं। इन देशों में मज़दूर संघों को प्रतिबंधित कर दिया जाता है और मज़दूरी का स्तर निम्न है। सुरक्षा संबंधी बचाव और छुट्टियाँ या तो लागू ही नहीं होती या फिर इन पर ध्यान नहीं दिया जाता है। चीन में स्थापित विदेशी उद्यमों में श्रमिकों की दशा के अध्ययन से पता लगता है कि श्रमिकों को मज़दूरी की अदायगी में स्थगन, काम के घंटों में विस्तार, व्यावसायिक सुरक्षा और स्वरूप का निम्न स्तर और सामाजिक सुरक्षा के लाभों के गैर-अदायगी जैसी गम्भीर समस्याओं का सामना करना पड़ा है। फलस्वरूप, यूनियनों के श्रम विवाद और हड़ताल अकसर देखने में आए हैं। श्रमिकों के काम और निर्वाह की परिस्थितियों को कमजोर बनाए बिना श्रम कानूनों में विदेशी मुद्रा के प्रवाह को आकर्षित करने के लिए सुधार करना वास्तव में कठिन है।
- 3) नियोक्ताओं की ओर से औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के अध्याय V-B को हटाने या संशोधन करने की निरंतर माँग रही है। इस अध्याय के अंतर्गत ऐसे प्रतिष्ठानों को, जिनमें पिछले बारह महीनों में प्रतिदिन 100 से अधिक श्रमिक काम पर लगे हों सरकार की पूर्व अनुमति के बिना अस्थायी छँटनी, स्थायी छँटनी और काम बंद करने की इजाज़त नहीं है। यहाँ यह याद रहे हड़ताल (श्रमिक संघों द्वारा) और तालाबंदी (मालिकों द्वारा) औद्योगिक विवाद के दो अंग हैं। आकार और तीव्रता दोनों में ही तालाबंदी श्रमिक वर्ग पर अधिक कठोर दंड आरोपित करती है क्योंकि 1961-75 के दौरान तालाबंदी की वज़ह से प्रति विवाद 16,273 श्रम-दिवसों की हानि हुई। 1976-90 में यह हानि तेज़ी से बढ़कर प्रति विवाद 30,136 श्रम-दिवस हो गई। यह 80 के दशक और बाद के वर्षों में श्रमिकों के विरुद्ध प्रबंधन की बढ़ती उग्रता का सूचक है। छँटनी, स्वैच्छिक निवृत्ति, साधारण श्रमिकों का दर्जा घटाकर बदली करना, मज़दूरी में कटौती आदि उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रबंधन ने आंशिक बंदी, छँटनी/स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीमों, तालाबंदी, शिकमी ठेके, मालिकाना हक का हस्तांतरण जैसे तरह-तरह के हथकंडे अपनाते हैं।

उपरोक्त तथ्यों के मद्देनज़र सन् 2001-02 के बजट प्रस्ताव में औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के अध्याय V-B में शामिल प्रावधानों का संशोधन करने का सुझाव रखा गया है ताकि श्रम के विनियोग में लचीलापन लाया जा सके। वर्तमान अधिनियम के अनुसार 100 श्रमिकों से ज़्यादा काम करने वाली औद्योगिक इकाइयों में श्रमिकों की छँटाई करने के लिए सरकार से अनुमति लेना ज़रूरी है। बजट 2001-02 में यह प्रस्ताव

रखा गया है कि उपरोक्त नियम को 1000 श्रमिकों से ज्यादा नियुक्ति वाली इकाइयों में लागू किया जाए।

- 4) हाल में पश्चिमी देश विश्व व्यापार संगठन (WTO) के माध्यम से विकासशील देशों पर सामाजिक धारा (social clause) लागू करने के प्रयास कर रहे हैं। सामाजिक धारा के तहत वह ऐसे अंतरराष्ट्रीय व्यापार समझौतों पर जोर दे रहे हैं जिनमें आयात को श्रम मानकों से अनुरूपता के साथ जोड़ा गया है। श्रम मानकों में शामिल बातें हैं— बाल श्रमिकों को काम पर न लगाना, न्यूनतम मजदूरी का अनुपालन, समान अवसर, पर्यावरण, सुरक्षा आदि। श्रमिक संघ इन सामाजिक धाराओं का विरोध कर रहे हैं क्योंकि उन्हें भय है कि इन्हें व्यापारिक कार्य-कलापों में संरक्षण के लिए और विश्व राजनीति में राजनैतिक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाएगा। यदि सामाजिक धारा को स्वीकार कर लिया गया तो इससे औद्योगिक संबंधों का भविष्य अत्यंत अनिश्चित हो जाएगा।

संक्षिप्त में, नीति निर्धारकों के सामने वास्तविक चुनौती और कठिन कार्य है निम्नलिखित युग्म उद्देश्यों के बीच कैसी सामंजस्य स्थापित किया जाए। (i) उद्यम के प्रतियोगी दबावों के तहत उत्पादिता और सम्पूर्ण कुशलता का बढ़ाना, (ii) श्रमिकों के मूल अधिकारों को सुनिश्चित करना।

- 5) श्रमिक संघों का कमजोर पड़ना : स्थायी श्रम के स्थान पर अस्थायी, आकस्मिक, ठेका श्रमिकों और महिलाओं की नियुक्ति बढ़ाने से श्रमिकों में सुरक्षा पैदा होती है। इन परिस्थितियों में श्रमिक बँट जाते हैं और श्रमिक संघ कमजोर होते हैं।
- 6) सार्वजनिक क्षेत्र निजीकरण को भी संगठित श्रमिक आंदोलन को तोड़ने के हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। निजीकरण के फलस्वरूप यदि रोजगार में असुरक्षा उत्पन्न हो तो यूनियन की गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने से कतरायेंगे। इसी प्रकार निजीकरण से स्थायी कर्मियों और ठेके पर काम कर रहे लोगों के बीच विभाजन हो जाएगा। अतः श्रमिक आंदोलनों का कमजोर पड़ना निजीकरण कार्यक्रम की कोई आश्चर्यजनक विशेषता नहीं होगी।
- 7) शुल्क देने में अवकाश, ब्याज में रियायत, सब्सिडी और पंजीकरण से मुक्ति जैसे सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए निजी क्षेत्र की कंपनियाँ अपनी उत्पादन इकाइयों का पिछड़े हुए क्षेत्रों में पुनर्स्थापन कर रही हैं। इन इकाइयों में रोजगार शुदा श्रमिक अनियमित, अस्थायी, गैर-श्रम संघबद्ध और ठेके पर लगे हैं। इनका औद्योगिक संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।
- 8) श्रम-किफायती (labour-saving) प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप एक ही इकाई में एक ही काम के लिए मुआवज़ा ढाँचे से विकृति पैदा हो गई है। श्रमिकों के राष्ट्रीय महासंघ ठेके पर लगे और अनियमित श्रमिकों के मामले उठाने में रुचि नहीं लेते हैं। इससे श्रमिक आंदोलन में बिखराव हुआ है और संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

बोध प्रश्न 4

- 1) सामूहिक समझौते की सफलता की क्या पूर्वापेक्षाएँ हैं?

.....

2) श्रमिकों की प्रबंधन में भागीदारी की स्कीम में क्या प्रमुख रुकावटें रही हैं?

3) आर्थिक सुधार और विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़ने के संदर्भ में औद्योगिक संबंधों के परस्पर विरोधी क्षेत्र कौन से हैं?

21.9 सारांश

सामान्यतः औद्योगिक संबंधों से अभिप्राय उन संबंधों से है जो रोजमर्रा के काम तथा श्रम और प्रबंधन के बीच संपर्क के दौरान उत्पन्न होते हैं। पेशेवर प्रबंधन के विकास तथा उत्पादन व सूचना प्रौद्योगिकी में तरक्की के साथ औद्योगिक संबंधों के क्षेत्र में विस्तार हुआ है। औद्योगिक संबंधों में तीन प्रधान अंग हैं— श्रमिक संघ, मालिकों के संघ और सरकार। भारत में 1975 तक (आपात स्थिति लागू होने से पूर्व) हड़ताल औद्योगिक विवादों की प्रमुखता रही। आपात स्थिति की अवधि (1976-79) के दौरान मालिकों की उग्रता में तेजी आई और तालाबंदी के कारण श्रम-दिवसों की हानि में तीव्र वृद्धि हुई। 1980 से, विशेषकर 1985-86 के बाद आकार और तीव्रता दोनों ही में तालाबंदी ने श्रमिक वर्ग को अधिक सख्ती से दंडित किया। औद्योगिक विवादों में श्रम-दिवसों की हानि और श्रमिक के शामिल होने के औसत दिवसों के तौर पर निजी क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र की अपेक्षा अधिक तेजी देखने में आई।

विवादों को निपटाने के दो अंग हैं— निवारण और समझौता। विवादों के निवारण के लिए राष्ट्रीय स्तर पर त्रिपक्षीय परामर्श का और कंपनी तथा दुकान तले स्तर पर कार्य समितियों और संयुक्त प्रबंधन परिषद् का प्रावधान है।

औद्योगिक विवादों को निपटाने के लिए औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के अंतर्गत निपटारा व्यवस्था का प्रावधान है। जिसमें समझौता अधिकारी, समझौता बोर्ड, जाँच अदालत, श्रम अदालत और औद्योगिक ट्रिब्यूनल शामिल हैं। विवादों के सुलझाने के लिए अन्य स्वैच्छिक उपाय हैं — राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था संवर्द्धन मंडल, अनुशासन संहिता, औद्योगिक

संघ। भारत में सामूहिक समझौता औद्योगिक केंद्रों के कुछ ही स्थलों तक सीमित हैं और इसके प्रचालन में कई बाधाएँ हैं। प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी का भी देश के औद्योगिक संबंधों पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। इस स्कीम की कई कमजोरियाँ हैं, जैसे विभिन्न यूनियनों के बीच और अन्य एक ही यूनियन के अंदर प्रतिद्वंद्विता, यूनियन को मान्यता देने के मामले का गैर-निपटारा, इत्यादि।

आर्थिक सुधारों के पेशेनज़र औद्योगिक संबंधों के मोर्चे पर अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। इनमें से महत्वपूर्ण है :

- i) श्रम बाज़ार में ऐसी लोचशीलता किस प्रकार लाई जाय जिससे एक ओर उत्पादक रोज़गार में वृद्धि और रोज़गार की किस्म में सुधार हो और दूसरी ओर श्रमिकों के शोषण से बचा जा सके।
- ii) श्रमिकों के कार्य और निर्वाह की परिस्थितियों को कमज़ोर किए बिना श्रम कानूनों में परिवर्तन किस प्रकार शुरू किए जाएँ। आर्थिक सुधार और निजीकरण अनेक तरह से श्रमिक संघों को कमज़ोर करती है और औद्योगिक संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं।

21.10 शब्दावली

- श्रमिक संघ (यूनियन)** : श्रमिक संघ श्रमिकों के स्वैच्छिक संगठन हैं जिनमें कार्यवाही से उनके हितों को बढ़ावा दिया जाता है और रक्षा की जाती है।
- श्रमिक आंदोलन** : इससे तात्पर्य अपने अधिकारों और हितों की रक्षा और संवर्द्धन के लिए श्रमिकों का सामूहिक संघर्ष है।
- औद्योगिक विवाद** : औद्योगिक विवाद काम बंदी के साथ-साथ श्रम और प्रबंधन के बीच ऐसे मतभेदों की ओर संकेत देते हैं जिनको औद्योगिक संबंध व्यवस्था द्वारा निपटाया जाता है।
- त्रिपक्षीय समझौते** : इससे अभिप्राय श्रमिकों, मालिकों और सरकार के प्रतिनिधियों—इन तीनों के बीच पारस्परिक क्रिया है।

21.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Ramaswamy E.A. and U. Ramaswamy (1981): *Industry and Labour*, Oxford University Press, Bombay, Chapter 6, 8.

Sharma A.M. (1984): *Industrial Relations - Conceptual and Legal Framework*, Himalaya Publishing House, Delhi.

ILO (1986): *Collective Bargaining A workers' Educational Manual*.

21.12 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

- 1) सद्भावपूर्ण औद्योगिक संबंध
- 2) औद्योगिक संघर्ष श्रमिकों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। कामबंदी से श्रमिकों को मज़दूरी से वंचित होना पड़ता है और कभी-कभी छँटनी भी होती है।

3) औद्योगिक संबंधों से अभिप्राय उन संबंधों से है जो श्रम और प्रबंधन के बीच सम्पर्क और रोज़मर्रा के काम के दौरान उत्पन्न होते हैं।-

औद्योगिक सम्बन्ध

बोध प्रश्न 2

1) श्रमिक यूनियन महासंघ

- i) भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (INTUC)
- ii) अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC)
- iii) भारतीय हिन्द मजदूर सभा (BMS)

नियोक्ता महासंघ

- i) भारतीय वाणिज्य और उद्योग मंडल महासंघ (FICCI)
- ii) भारतीय नियोक्ता परिषद् (CIE)
- iii) भारतीय उद्योग परिषद् (CII)

2) i) सदस्यता का निम्न विस्तार

- ii) श्रम यूनियनों का विखंडन
- iii) सदस्यता में गिरावट

बोध प्रश्न 3

1) (i) नियामक स्वरूप

2) उपभाग 21.5.1 देखिए।

3) उपभाग 21.5.2 देखिए।

बोध प्रश्न 4

1) उचित औद्योगिक वातावरण, स्वार्थ की गैर-मौजूदगी, अपनत्व की भावना, मुक्त अभिव्यक्ति और दोनों ओर से सूचना का मुक्त आदान-प्रदान।

2) यूनियन की मान्यता के मामले का गैर-निपटारा, उचित कार्य संस्कृति के विकास के पहल का अभाव, श्रमिक यूनियनों और प्रबंधन की ओर से पहल का अभाव।

3) भाग 21.8 देखिए।